वन पंचायतों को न निगल ले सत्ता का अजगर

नयी वन पंचायत नियमावली भले ही सरकार की प्रत्येक राजस्व गांव की वन पंचायत की इच्छा पूरी कर दे, लेकिन वनों पर निर्भर ग्रामीणों को इससे कोई लाभ नहीं होगा

नैनीताल से पूरन बिष्ट

ग्रामीण संसाधनों के प्रबंधन की अनूठी मिसाल रही उत्तरांचल की वन पंचायतों के प्रबंधन और स्वामित्व को लेकर उठा विवाद थमने का नाम नहीं ले रहा। पंचायती वनों को वन विभाग के अधीन कर देने वाली नयी वन पंचायत नियमावली के विरोध के दबाव में राज्य सरकार ने पिछले दिनों आरक्षित वनों का कुछ हिस्सा वन पंचायतों को लौटाने का आदेश जारी किया, तो ग्रामीणों का गुस्सा ठंडा पड़ने की उम्मीद जगी थी, लेकिन ऐसा करने के लिए इस शासनादेश में जिन शर्तों का उल्लेख है, उन्हें देख कर लगता है कि 'प्रत्येक राजस्व गांव की एक वन पंचायत हो'

सरकार की यह इच्छा तो पूरी हो जाएगी परंतु वन उत्पाद हासिल करने के लिए ग्रामीणों के कष्ट पूर्ववत बने रहेंगे। उल्टा राज्य के पहाड़ी क्षेत्र के राजस्व गांवों का भूगोल और जमीन के मालिकाना स्थिति के मद्देनजर यह आदेश आपसी वैमनस्य और अदालती लड़ाइयों की नयी पृष्ठभूमि तैयार करने वाला साबित हो सकता है।

उत्तरांचल वन पंचायत संघर्ष मोर्चा के अनुसार नये शासनादेश का मकसद वन पंचायत नियमावली के विरुद्ध उपजे गुस्से को ठंडा करना और ग्रामीणों को आपस में उलझा देना है। पिछले दिनों विधानसभा में वन मंत्री नवप्रभात की इस घोषणा के बाद कि वन पंचायतों को वन निगम के अधीन लाया जा रहा है, पंचायतें सशंकित हैं तथा इस घोषणा के विस्तृत विवरण का इंतजार कर रही हैं। यदि वन पंचायतों को विश्वास में लिए बिना सरकार एकतरफा और वन पंचायत विरोधी निर्णय लेती है, तो उसका पुरजोर विरोध किया जाएगा।

वन संसाधनों को चिर स्थायी बनाने और उनके विवेकपूर्ण दोहन के लिए उत्तरांचलवासियों ने वन पंचायत, लठ पंचायत, देव वन जैसे अनेक तरीके ईजाद किये हैं, जिनका प्रबंधन ग्रामीण सदियों से करते आये हैं। औपनिवेशिक काल में वनों पर सरकारी नियंत्रण की शुरुआत के विरुद्ध फूटे असंतोष के बाद १९३१ में अस्तित्व में आयी वन पंचायत प्रणाली, ग्रामीणों द्वारा सामूहिक रूप से संचालित की जाने वाली वन प्रबंधन की ऐसी ही अनूठी मिसाल है। जो वनों के क्षरण के इस दौर में न केवल हरियाली के द्वीपों को बचाये हुए है बल्कि ग्रामीणों की जरूरतों की आपूर्ति और वन संरक्षण के बीच संतुलन भी बना हुआ है। वन अधिनियम १९२७ के तहत 'ग्राम वन' के रूप में पिछले ७३ वर्षों में गठित करीब ८ हजार वन पंचायतें राज्य के ५ हजार वर्ग किमी से अधिक वन क्षेत्र का प्रबंधन कर रही हैं।

वन पंचायतों का संचालन शासन द्वारा निर्मित एक नियमावली के अधीन किया जाता है। जिसमें वन क्षेत्र का संरक्षण तथा वन उत्पाद प्राप्त करने के उप नियम बनाने का अधिकार ग्रामीणों के पास होता है। पिछले साल सरकार ने नियमावली में संशोधन कर पंचायतों के परंपरागत

पंचायती वनों पर निर्भर जीवन।

जनतांत्रिक स्वरूप को समाप्त कर वन विभाग के अधीन कर दिया था। ग्रामीणों के विरोध के कारण नयी नियमावली अब तक लागू नहीं की जा सकी है। जन-असंतोष को समाप्त करने के लिए अप्रैल २००३ में राज्य सरकार ने १० पृष्ठों का एक शासनादेश निर्गत किया है, जिसका लबोलुआब यह है कि ईंधन, चारा और लघु वन उपज प्राप्त करने के लिए राज्य के प्रत्येक राजस्व गांव के लिए वन पंचायत का गठन किया जाएगा।

शासनादेश को लागू करने में सबसे बड़ी बाधा राज्य के १५,५५९ राजस्व गांवों का ३१००८ उप गांवों में बंटा होना और भूस्वामित्व के अस्पष्ट कानून हैं। अनेक राजस्व गांव एक-एक दर्जन तोकों (उप गांव) में विभक्त हैं। ऐसे तोकों की अपनी अलग-अलग वन पंचायतें हैं। राजस्व गांवों की सामूहिक भूमि, कानूनी या परंपरागत रूप से इन उप गांवों में बंटी हुई है इसलिए यह मान कर चलना कि ऐसी सामूहिक भूमि पर एक वन पंचायत का गठन करके समस्त ग्रामीण वन उत्पादों का उपभोग संयुक्त रूप से कर लेंगे, स्थिति को कमतर आंकना होगा। यदि डंडे के बल पर ऐसा किया जाता है तो इससे गांवों में न केवल वैमनस्यता बढ़ेगी बल्कि लोग इन मसलों को लेकर अदालतों की शरण में भी जाएंगे।

जिन राजस्व गांवों में वन पंचायतें नहीं हैं या वन पंचायत गठित करने के लिए सामूहिक स्वामित्व की भूमि नहीं है, उन्हें आरक्षित वनों का कुछ भाग वन पंचायत के लिए देने का प्रावधान नये शासनादेश में है। राज्य के ऐसे गांव जो आरक्षित वन क्षेत्रों से काफी दूरी पर या चीड़ वनों के पास बसे हैं, उन्हें नये शासनादेश से राहत मिलने की उम्मीद नहीं है।

चीड़ के वनों में सिवाय चीड़ के कुछ और नहीं होता इसलिए चारा और लघु वन उपज के रूप में ग्रामीण जरूरतों की आपूर्ति में पहले की तरह कठिनाई बनी रहेगी। पहाड़ 'पत्रिका' के संपादक शेखर पाठक का कहना है कि 'नये शासनादेश के तहत व्यक्त की गयी मंशा को पूरा करने के लिए अनावश्यक शर्तें थोपने की बजाय सरकार को वन विभाग के नियंत्रण वाली वन विहीन भूमि ग्राम समुदाय को लौटा देनी चाहिए। ऐसा करने से हरियाली तो बढ़ेगी ही वनवासियों की वनाधारित आजीविका भी बची रहेगी।

शासनादेश में एक विवादित बिन्दु यह है कि वन पंचायत में शामिल किये जाने वाले आरक्षित वन क्षेत्र की विधिक स्थिति पूर्ववत बनी रहेगी। इस नियम के चलते एक ही वन क्षेत्र में दो प्रकार के नियम अस्तित्व में होंगे। वन पंचायत संघर्ष मोर्चा के संयोजक तरुण जोशी कहते हैं 'इस मतलब यह हुआ कि वन पंचायत में मिलाये जाने वाले आरक्षित वन के प्रबंधन की जिम्मेदारी का भार ग्रामीणों को उठाना होगा और वन उत्पाद प्राप्त करने के लिए उन्हें वन विभाग का मोहताज बने रहना पड़ेगा। वन पंचायतों का नियंत्रण पूरी तरह जनता के हाथों में सौंपे जाने की मांग को लेकर चल रहे आंदोलनों से जुड़े कार्यकर्ता महेश जोशी का मानना है कि 'यदि सरकार राज्य के प्रत्येक गांव के लिए वन पंचायत बनाने को लेकर गंभीर है, तो उसे राजस्व गांव को मानक मानने की बजाय तोक या उप गांव को वन पंचायत के गठन का आधार बनाना चाहिए। शासनादेश में कहा गया है कि जिस गांव में ५० से अधिक वयस्क व्यक्ति, पालतू पशुओं को पाल रहे हों, ऐसे गांवों में ही वन पंचायतें गठित की जाएंगी इसलिए फैली हुई आबादी वाले पर्वतीय क्षेत्र के ग्रामीण शासनादेश में वर्णित लाभों से वंचित रह जाएंगे।

शासनादेश में इस बात का उल्लेख किया जाना कि 'वन पंचायतों को आरक्षित वन क्षेत्र की भूमि सौंपने के लिए केन्द्र सरकार की इजाजत की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह वन अधिनियम १९२७ के अन्तर्गत वर्णित वानिकी कार्य का ही हिस्सा है। सरकार द्वारा वन अधिनियम की ग्रामीणों के पक्ष में की गयी व्याख्या है। परंतु यह देखा जाना अभी शेष है कि जन-सहभागिता का यह उपक्रम विश्व बैंक से ज्यादा कर्ज ऐंठने के लालच में किया जा रहा है या जमीनी सच्चाइयों को आत्मसात कर वन विभाग इस नतीजे पर पहुंचा है कि ग्रामीणों की मदद के बिना वन संरक्षण के किसी सर्वसम्मत रास्ते का निर्माण असंभव है।